तृतीय अध्याय

3. देवेश ठाकुर के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय सामाजिक यथार्थ के विविध आयाम

'समाज' एक व्यापक शब्द है । परिवार से लेकर विश्वव्यापी मानव समूह को 'समाज' के विविध रूपों में गृहीत किया जाता है। 'समाज' शब्द का वस्तुपरक आशय ऐसे अधिसँख्य व्यक्तियों के समूह से होता है जिनके उद्देश्य स्पष्ट और स्थायी होते हैं । समाज की स्थापना के बारे में शशिभूषण सिंहल लिखते हैं, "मानव के विकास क्रम में समाज की स्थापना हुई है । मनुष्य सामाजिक प्राणी है, व्यक्ति ने अपनी रीति संबंधी एवं पैत्तृक मूलवृत्तियों के कारण अपना अकेलापन त्यागकर पारिवारिक जीवन अपनाया है । उसके उपरान्त उसकी सामाजिक भावना उत्तरोत्तर विकसित होती रही है । अत: समाज सोद्देश्य व्यक्तियों का गतिशील गठन है । समाज अपने सदस्यों को बाह्य घातक तत्त्वों द्वारा नष्ट होने से बचाता है, रक्षा कर उनके व्यक्तित्व का विकास करता है और कुछ जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा कर उन्हें पाने के लिए प्रयत्नशील होता है।"[1]

इस प्रकार यह समूह से निर्मित विशिष्ट उद्देश्य से बनाई गई संस्था है। इस संस्था का उद्देश्य व्यक्ति-समाज की रक्षा, उन्नयन और हित है। अत: वह उद्देश्य व्यक्तिपरक न होकर आवश्यकतानुरूप सार्वजनिक होता है । समाज में रहने वाले व्यक्तियों के बीच परस्पर सहयोग, एकता, शान्ति और सौहार्द की स्थिति स्थापित करना समाज का उत्तरदायित्व होता है । कार्ल मार्क्स व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी मानते हैं । व्यक्ति को सामाजिक सम्बन्धों का समुच्चय भी कह सकते हैं । अत: समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में ही व्यक्ति-विकास का रेखांकन करते हुए देवेश ठाकुर ने लिखा है, "व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में द्वन्द्वात्मकता का योग विशिष्ट होता है । दूसरी ओर,

---

1. शशिभूषण सिंहल, 'हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ', प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, संस्करण-2006, पृ॰ 13

व्यक्ति के समस्त क्रिया कलाप सामाजिक विकास के वस्तुपरक नियमों के तहत निर्धारित होते हैं । दूसरे शब्दों में व्यक्ति-जीवन की समस्त गतिविधियाँ सामाजिक परिवेश में ही सम्पन्न होती हैं ।"[1] इस प्रकार व्यक्ति की सभी आशा-आकांक्षाएँ-इच्छाएँ और आवश्यकताएँ उसकी आन्तरिकता की उपज नहीं है। इनका संबंध उसकी पारिवेशिक परिस्थितियों से होता है । व्यक्ति की आंतरिकता, अनुभूतियाँ, संवेदन और स्वप्न सभी अपने समाज के यथार्थ से उपजते और विकसित होते हैं । व्यक्ति समाज से ही शक्ति और प्रेरणा ग्रहण करता है । आधुनिक युग तक आते-आते व्यक्ति की वैज्ञानिक उपलब्धियों ने भी इस भावना को समृद्ध करने में अपना विशिष्ट योगदान दिया है और व्यक्ति को उसकी सामाजिक सम्बद्धता से और अधिक मजबूती से जोड़ दिया है।

साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होता है; जो जन्म लेता है, विकास पाता है और समाज में ही उसकी जीवन गाथा का अन्त होता है। इसी कारण वह स्वयं को समाज से अलग नहीं कर पाता है। अत: हम कह सकते हैं कि साहित्य समाज से, समाज के लिए सामग्री ग्रहण करता है । इस दृष्टि से साहित्य का साध्य तथा साधन समाज ही है । इसी कारण युग-चेतना के माध्यम से जिस साहित्य का निर्माण होता है उसे अनेक विद्वानों ने समाज का दर्पण, जीवन की अनुकृति अथवा जीवन की आलोचना कहा है । शशिभूषण सिंहल की दृष्टि से, "सामाजिक उपन्यास, समाज के विभिन्न क्षेत्रों, स्त्री-पुरुष के रीति-सम्बन्धों, परिवार, जाति, सम्प्रदाय, वर्ग, राष्ट्र, अर्थ-दशा, रीति, धर्म, सभ्यता, संस्कृति आदि का चित्रण करते हुए उनके लक्ष्य तथा उनकी समस्याओं का निरूपण करता है।"[2]

उपन्यासकार पाठकों को सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक कर उनमें वर्तमान दशा के प्रति विद्रोह-भाव जगाता है और उन्हें वांछित जीवन दशाओं

---

1. देवेश ठाकुर, 'साहित्य की सामाजिक भूमिका', पृ॰ 6
2. शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास की प्रवृतियाँ, प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, संस्करण-2006, पृ॰ 14

में अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है । मध्यमवर्ग के लोग जागरूक, वर्तमान परिस्थितियों से परिचित तथा समस्याओं के मूल कारण को जानने की शक्ति रखते हैं जिससे उनके अंदर एक ज्वाला जलती रहती है और वही ज्वाला उन्हें सामाजिक क्रान्ति करने की प्रेरणा प्रदान करती है । आर्थिक विषमता मानव-जीवन को विकीर्ण कर देती है । शिक्षा-संस्कार, अधिकार, अधिकार-चेतना आदि आर्थिक दशा पर निर्भर हैं । इसके अभाव में समाज में अनेक बुराइयाँ, जातिगत द्वेष, वर्ग-संघर्ष, अनमेल विवाह, बाल-विवाह आदि फैलते हैं जिसके कारण राष्ट्र के विकास में बाधा उत्पन्न होती है । आर्थिक असंतुलन में साधारण ग्रामीण जनता का अज्ञान भी कारणीभूत है । अज्ञान का मूल कारण है- शिक्षा का अभाव । अशिक्षा-अज्ञान से गरीबी बढ़ती है और गरीबी से अशिक्षा बनी रहती है । बदलते परिवेश के साथ प्रेमचंदोत्तर युगीन उपन्यास साहित्य में भी परिवर्तन आया है । नई-नई समस्याएँ उभरकर सामने आयी हैं ।

सामाजिक यथार्थ समाज की सम्पूर्ण वस्तुस्थिति का, चाहे वह किसी भी रूप में विद्यमान है वही वास्तविकता है । वास्तविकता का यह बोध ज्ञान की उस आधारशिला पर प्राप्त होता है जिस पर समाज की नींव टिकी होती है । सामाजिक यथार्थ चित्रण किसी सामाजिक प्राणी का भी हो सकता है और समाज की किसी घटना का भी, जिससे समाज प्रभावित होता है । सामाजिक यथार्थ में समाज के सूक्ष्म तत्त्व का भी विवेचन किया जाता है ।

व्यक्ति, परिवार एवं वर्गों के सामंजस्य से ही समाज का निर्माण होता है । इनके बिना समाज का अपना कोई अस्तित्व नहीं माना जा सकता । अत: समाज के संगठित तत्त्वों के रूप में स्थापित इन इकाइयों का चित्रण भी सामाजिक यथार्थ साहित्य में समाज की वास्तविक स्थिति का बोध कराता है, जिसका निर्माण व्यक्ति एवं समाज के मिले-जुले परिवेश के बहुआयामी संघर्ष से होता है । साहित्य व्यक्ति से समाज का सम्बन्ध निर्धारित करता है। साहित्य के माध्यम से व्यक्ति समाज में अपनी स्थिति एवं समाज की व्यवस्था की स्थापना में पूर्ण रूप से योगदान देता है ।

लालजी राम शुक्ल सामाजिक यथार्थ के विषय में लिखते हैं- "सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य ऐसे चित्र से है कि रचनाकार वास्तविक घटनाओं को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करता है ताकि पाठक समाज में होने वाले विभिन्न व्यापारों के औचित्य-अनौचित्य को सफलतापूर्वक समझ सके और एक आदर्श समाज की ओर प्रवृत्त हो सके ।"[1]

सामाजिक वस्तुस्थिति के अन्तर्गत समाज की वास्तविक अवस्था का चित्रण किया जाता है परन्तु साहित्य में किसी भी वस्तु का तद्वत चित्र उतारकर रख देना कठिन कार्य होता है । साहित्यकार का चित्र कैमरे द्वारा लिया गया चित्र नहीं होता बल्कि उसमें लेखनी द्वारा अपने अनुभव और कल्पना के सुंदर रंग ढले होते हैं । वह कैमरे के चित्र जैसा है वैसा ही उसका वर्णन नहीं कर देता बल्कि इस रूप में प्रस्तुत कर देता है कि जिससे पाठक युग के सत्य एवं समाज में होने वाले कार्य-व्यापारों के औचित्य और अनौचित्य को सरलता से परख सकें और उन मर्यादाओं का अनुसरण कर सकें जिन पर चलकर एक आदर्श समाज की स्थापना हो सकती है ।"[2]

इस प्रकार साहित्य में सामाजिक विषमताओं और वैयक्तिक स्वार्थ से आक्रान्त, पीड़ित समाज की दयनीय परिस्थितियों को उसके यथार्थ, वास्तविक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना सामाजिक यथार्थवादी साहित्यकारों का प्रधान लक्ष्य होता है और वही देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्ग के सामाजिक यथार्थ को बताकर किया है ।

3.1 मध्यमवर्गीय विसंगतियाँ

समाज, विज्ञान, अर्थ आदि सभी क्षेत्रों में विसंगतियाँ भरी हुई हैं किन्तु सर्वाधिक विसंगतियाँ मध्यमवर्गीय चरित्र में पाई जाती हैं । जो हम चाहते हैं वह मिलता नहीं और जो हमारे पास है उससे हम संतुष्ट नहीं होते । देवेश ठाकुर के उपन्यासों के पात्र जिस संकोच, मिथ्यागान और महत्त्वाकांक्षा की दुनिया में विचरते हैं, वही उनकी नियति है । ये पात्र यदि जंजीरों को तोड़

---

1. लालजी राम शुक्ल, सरल मनोविज्ञान, पृ॰ 2
2. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ॰ 231

नहीं सकते, किसी समस्या पर दो टूक बात नहीं कर सकते तो कोई अचरज की बात नहीं । वर्गीय विभाजन में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग में साफ रेखा खींची जा सकती है किन्तु मध्यमवर्ग की पटरी टेढ़ी-मेढ़ी है, जिनमें मध्यमवर्ग का प्राणी घुट-घुटकर जीवन जीने के लिए अभिशप्त है ।

साधनहीनता मध्यमवर्ग को उच्चता के स्वर्ग से नीचे ढकेलती है और स्तरभेद बनाए रखने के लिए वह नीचे नहीं जा सकता है। देश का शासन चलाने में बुद्धिजीवियों के रूप में सोचने-विचारने में यही मध्यमवर्ग आगे रहा है । 'भ्रमभंग' के चन्दन की कैफियत उसके व्यक्तित्व का आर्थिक मूल्याँकन करती है- "अपना कमरा । कमरे में प्रवेश करता हूँ । एक अजनबीपन-सा महसूस करता हूँ । इधर-उधर बिखरा हुआ सामान । मैं उसका मूल्य आंकने लगता हूँ । यह सारा सामान कितने का होगा? सौ से अधिक का नहीं । बेचने जाऊँ तो पचास का भी नहीं । आयु के इक्कीस साल में मेरी स्थिति पचास रुपये की भी नहीं है ।"[1]

मध्यमवर्ग समाज का वह वर्ग है जिसके पास न तो अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं और लालसाओं की पूर्ति के साधन होते हैं और न ही वे अपने संस्कारवश उन साधनो को खोज पाते हैं । 'भ्रमभंग' का नायक चंदन इस अन्तर्द्वन्द्व का शिकार होता है । उसके खोखले संस्कार उसे निरन्तर भ्रमित करते हैं- "कितने सारे निषेध। आधी जिन्दगी अभावों, उपेक्षाओं और अपमानों के बीच बीती। आगे की आधी निषेधों के बीच बीतेगी । तुम क्या इसीलिए जन्मे थे कि अभिशप्त होकर जियो? तुम क्या महज एक निर्वाक माध्यम बनकर रह जाओगे चन्दन....?

हम लोग-हम लोगों का वर्ग । समूचे जीवन की आवश्यकताओं को जुटाने में खपा दो । जब तक कुछ उपलब्धि हो, तब तक तन और मन से इतने अवसन्न और निरपेक्ष बन जाओ कि उसे भोग ही न सको । जीवन का

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्रबन्ध सम्पादक), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (भ्रमभंग); संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ॰ 40

कोई अर्थ ही कहाँ है हमारे लिए। हमारे लिए तो जीवन बस संघर्ष है, उपेक्षा है, अभाव है और सूनी महत्त्वाकांक्षा।"[1]

इस प्रकार मध्यमवर्ग की असमर्थता और संस्कार उसी को अभिशप्त करने लगे हैं । "इसीलिए" उपन्यास का नायक अवस्थी अपने संस्कारों के कारण मजबूर है तथा एक स्थान पर मीनाक्षी से कहता है- "मेरे मध्यमवर्गीय संस्कार मुझे किनारे पर खड़ा रहने के लिए मजबूर करते हैं । मन तो चाहता है, आँखों के सामने फैले हुए इस तूफानी समुद्र में कूद पड़ूँ लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाता । ऐसा पहले कभी किया भी नहीं । इसकी आदत ही नहीं है। न ऐसी स्थितियाँ ही सामने आई कि मजबूर होकर आँखें बन्द करके आगे बढ़ जाऊँ। बस, हमेशा चाहता रहा हूँ कि कोई आकर धक्का दे । लेकिन ऐसे हालात में इस काम के लिए कौन आगे आएगा।"[2]

मध्यमवर्ग में परिवेशगत विसंगतियाँ भी पाई जाती हैं । इस वर्ग के कुछ लोग दूसरों की सहायता करना चाहते हैं, प्रकाश बाँटना चाहते हैं, घर में लगी आग को बुझाना चाहते हैं लेकिन उनके अपने ही घर में लगी आग स्वयं के बुझाने से भी नहीं बुझती जिस कारण से वह हमेशा दुखी और परेशान रहता है तथा वह तरह-तरह के सपने बुनता है लेकिन उसके सामने अनेक प्रकार की समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं जो उसको आगे बढ़ने से रोकती हैं । "मैं अपने को टटोलता हूँ । क्या सुविधाएँ जुटाना ही मेरा लक्ष्य रहा है? 'नहीं', मेरे भीतर से आवाज आती है । यदि मैं सुविधाएँ ही जुटाना चाहता तो लिखने के अलावा भी इस महानगरी में सैंकड़ों दूसरे काम हैं । यहाँ लोग सिर्फ दाँत निपोर कर और चकल्लस करके लखपति बन गए हैं । एक दरी और एक ट्रंक लेकर आए थे और आज बढ़िया इलाकों में, बढ़िया फ्लैटों के मालिक बन बैठे हैं । मैं इतना नीचे तो नहीं गिरा । पैसे और सुविधाओं की आकांक्षा आदमी को किसी भी सीमा तक गिरा सकती है । मैंने

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (भ्रमभंग), संकल्प प्रकाशन-बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 154
2. वही, (इसीलिए) पृ० 61-62

मध्यमवर्ग की इस कमजोरी पर अंकुश बनाए रखा है । हाँ, जीने के लिए कुछ सुविधाएँ तो चाहिए ही । सिर्फ कुछ, ज्यादा नहीं । इतनी नहीं कि जीवन मूल्य ही आँखों से ओझल हो जायें ।"[1]

वर्तमान युग में मध्यमवर्ग में यौन-सम्बन्धों का खुलापन आ गया है। मध्यमवर्ग के पैसे वाले व्यक्ति अपना दिल बहलाने के लिए क्लबों, होटलों में जाकर अपना दिल बहलाते हैं । इन सम्बन्धों का खुलापन इस सीमा को पार कर गया है कि यह छात्रा और शिक्षक, भाई-बहन, पिता-पुत्री, माता-पुत्र के पवित्र सम्बन्धों की सीमा लांघ गया है । खुले आम सड़क पर ये वेश्यावृत्ति के धन्धे हो रहे हैं । पैसा, शोहरत और सैक्स जीवन का मुख्य हिस्सा बनकर रह गया है। "बड़े-बड़े प्रोग्रेसिव बापों की बेटियाँ देह नुचवाने के अलावा और क्या-क्या कर रही है इण्डस्ट्री में । फिर भी मजाल है चेहरे पर कोई गिल्ट दिखलाई पड़े ।"[2]

मध्यमवर्गीय मानसिकता ही ऐसी है जो राजनीति, शिक्षा, प्यार, ड्रिंक्स, सेक्स, दफ्तर, प्रमोशन आदि अनेक समस्याओं पर वार्तालाप करती है । कुछ करने की तत्परता सभी में होती है किन्तु लड़ने के लिए तैयार कोई नहीं होता। सभी एक-दूसरे को कोसते रहते हैं। मध्यमवर्ग ही नारी मुक्ति की आवाज देता है और मध्यमवर्ग ही उसके शोषण का सर्वाधिक उत्तरदायी भी है। 'गुरुकुल' के प्रो॰ तिवारी, 'प्रिय शबनम' के मंगल इसके उदाहरण हैं । यह बेमेल तालमेल कभी-कभी भयंकर परिणाम सामने लाता है । इस विसंगति से उपजे तनावों को दोनों झेलते हैं । 'प्रिय शबनम' के नायक मंगल की जिंदगी दो विरोधी सीमांतों में फँस गई है । इन विसंगतियों में वह छटपटाता है । परिवार और समाज की बात के अतिरिक्त एक अकेले व्यक्ति की मानसिकता इतनी घुली-मिली है कि उसे आगे बढ़ने नहीं देती । 'इसीलिए' का अवस्थी

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र॰सं॰), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ॰ 290-291
2. रोहिणी शिवबालन (प्र॰सं॰), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (काँचघर), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ॰ 330

तथा 'अपना-अपना आकाश' का प्रकाश इसके अच्छे उदाहरण हैं । वे समाज में समायोजन नहीं कर पाते । परिस्थिति के शिकंजों में वे जकड़ जाते हैं । अपनापन, तिरस्कार आदि को ढ़ोता हुआ चंदन विसंगतियों के भार से घायल होकर हताश बन जाता है किन्तु वह नयी आकांक्षा की शुरूआत करके आगे बढ़ता है । 'प्रिय शबनम' का मंगल अपनी नयी 'आस्था' के साथ कार्य में जुटना चाहता है । इस प्रकार देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्गीय विसंगतियों से व्याप्त जीवन को गहराई से प्रकट करने में सफलता पायी है ।

3.2 सामाजिक चेतना

मध्यमवर्ग के लोग जागरूक, वर्तमान परिस्थितियों से परिचित तथा समस्याओं के मूल कारण को जानने की शक्ति रखते हैं, जिससे उनके अन्दर एक ज्वाला जलती रहती है और वही ज्वाला उन्हें सामाजिक क्रान्ति करने की प्रेरणा प्रदान करती है । इस वर्ग के लोगों में समाज की समस्याओं के प्रति जागरूकता होती है जो देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में दिखलाया है । 'इसीलिए' उपन्यास में मध्यमवर्गीय वर्षा कह रही है- "असली जिंदगी शहरों में नहीं, गाँवों में है । गाँवों के लोग दो जून रोटी के लिए अपनी मिट्टी के साथ कितना जूझते हैं, यह वहाँ जाकर ही पता लगता है । आदिवासी गाँवों की हालत तो और भी खराब है । वहाँ भूख है, शोषण है, अभाव है, अपमान है, अशिक्षा है और संस्कारहीनता है। वहाँ लोगों की आँखें बन्द हैं और दिमाग भी बन्द हैं । आज जरूरत इस बात की है कि उनको आँखें दी जाएँ, उन्हें समझ दी जाए और उन्हें बतलाया जाए कि जो अभागी जिन्दगी तुम जी रही हो, उसका कारण तुम खुद हो ।"[1]

मध्यमवर्ग समाज का ऐसा वर्ग है जो विभिन्न प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त होकर भी समाज के बारे में हमेशा सोचता रहता है तथा उनके प्रति सचेत और जागरूक रहता है और वह देश में ब्राह्मणमवाद, जातिवाद, प्रदेशवाद तथा सम्प्रदायवाद आदि का विरोध करता है तथा आम आदमी की हिमायत की

---

1. रोहिणी शिबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 100

बात करता है । देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'जनगाथा' के माध्यम से बतलाया है कि "इस देश के दलितों को मनु ने मारा है । इस देश की नारी का अपमान मनु ने किया है । समय आ गया है कि मनुस्मृति की होली जला देनी चाहिए और उसकी राख को समुद्र में बहा देना चाहिए । इस देश में जब तक ब्राह्मणवाद, जातिवाद, प्रदेशवाद और सम्प्रदायवाद बना रहेगा, तब तक धर्म भी बना रहेगा, भाग्यवाद भी बना रहेगा और ईश्वरवाद भी बना रहेगा । और इन सबके रहते आम आदमी पिसता रहेगा, शोषित होता रहेगा और जूतों के तलवों की तरह घिसे चेहरे लिए सिर्फ रोटी के दो टुकड़ों के लिए दर-दर अपमान का नरक झेलता रहेगा ।"[1]

इस प्रकार लेखक ने अपने उपन्यासों में दिखाया है कि मध्यमवर्ग के लोगों में सामाजिक चेतना है और एक ज्वाला उनमें जलती रहती है तथा वह सामाजिक समस्याओं के बारे सोचते हैं। वह समाज की हर प्रकार की समस्या के प्रति सचेत रहते हैं तथा लोगों के व्यवहार, उनकी आशाओं-आकांक्षाओं, उनके विचारों को आगे बढ़ाने के प्रयत्न भी करते हैं । लेकिन अपने सांस्कृतिक जीवन के कारण कुछ नहीं कर पाते । फिर भी वे निरन्तर समाज को आगे बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं ।

3.3 पारिवारिक विघटन का चित्रण

प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता की गरिमा भौतिकता, विज्ञान, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव आदि के परिणामस्वरूप नष्ट हो रही है । भौतिकतावादी सभ्यता इन सांस्कृतिक चित्रों को जर्जर कर रही है । परम्परा से प्रचलित संयुक्त परिवार प्रथा का महत्त्व है और कुछ हानियाँ भी हैं । बदलते स्वरूप ने संयुक्त परिवारों की जड़ों को हिला दिया है जिसके परिणाम आधुनिक उपन्यासों में दिखाई दे रहे हैं ।

देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्ग के पारिवारिक विघटन को दिखाया है । शैक्षणिक प्रगति के कारण लड़के और लड़कियाँ परिवार में

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 475

अपनी पृथक् सत्ता बनाने में लगे हैं । संयुक्त परिवार में सदस्य अधिक होने के कारण व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं कर पाते, अतः वे कुंठित जीवन जीने के लिए बाध्य होते हैं । जिस कारण वे अपने संयुक्त परिवार को छोड़कर दूसरी जगह रहने लग जाते हैं जिससे उनके परिवार के बड़े सदस्यों को दुःख झेलना पड़ता है । देवेश ठाकुर के उपन्यास 'अपना-अपना आकाश' में यह दिखाया है "और ऊपर लौटते हुए सड़क के किनारे बैंच पर बैठे हुए वे बूढ़े सज्जन चेहरे पर उदासी के बीच अनुभव की रेखाएँ । वह थोड़ा सुस्ताने के लिए उनके पास ही बैठ गई थी। वे बोलने लगे थे । दो-चार वाक्य बोलते-बोलते उनकी आँखें झरने लगी थीं... तर-तर... तर । बूढ़ी आँखों से झुर्रीदार गालों पर बहने वाले आँसू । उसका दिल पसीज गया था । उन्होंने उससे कहा था-बेटा, आज हफ्ते भर बाद किसी से बोलने को मिला है... और वे फिर रोने लगे थे । फिर धीरे-धीरे वे अपनी व्यथा-कथा कहने लगे थे । बड़ा लड़का डॉक्टर है । वह लंदन में बस गया है। यहाँ छोटा है । मेजर है । उसका अपना सर्कल है । बच्चों की अपनी दुनिया है । पत्नी को मरे तीन साल हो गए । तब से बिल्कुल अकेला हो गया हूँ । किसी से बात करने की सुविधा नहीं। सुबह-शाम खाना मिल जाता है । सिगरेट के लिए बेटे के सामने हाथ फैलाते शर्म आती है । अब तो जीने की इच्छा ही नहीं रह गई है । नहीं चाहता कि इस उम्र में कोई दुर्घटना देखूँ...।"[1] इससे पता चलता है कि मध्यमवर्गीय व्यक्ति के पास सब-कुछ होते हुए भी वह अपने परिवार में अकेला है और घुट-घुटकर जीवन जीने के लिए मजबूर है ।

औद्योगिक कारखानों के कारण नगर तथा महानगरों में बढ़ती हुई आबादी आवास की समस्या पैदा कर देती है, जिसके कारण मध्यमवर्गीय परिवार विघटित हो रहे हैं । 'काँचघर' के दो प्रेमी नरेश और सुषमा शादी से पहले 20 अगस्त, 1980 को कोने की मेज पर बैठकर एक-दूसरे को समझ लेना

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (अपना-अपना आकाश), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 146

चाहते हैं। नरेश शादी के बाद अपनी माँ को भी अपने साथ रखना चाहता है किन्तु सुषमा उन्हें पूरा खर्चा देकर बाहर रखना चाहती है । वह कहती है, "मेरा कहना बहुत साफ है.... आज के जमाने में दो औरतें एक परिवार में नहीं रह सकती और जबकि उनमें एक काम करने वाली हो । काम करने वाली की अपनी दलीलें होती हैं और घर संभालने वाली की अपनी । दोनों ही अपनी-अपनी जगह सही होती हैं और इसीलिए दोनों में से छोटा बनने को कोई भी तैयार नहीं होता ।"[1]

निरन्तर एक साथ रहने के कारण परिवार के सदस्यों में ऐसा वैमनस्य फैलता है कि उन्हें आपस में एक-दूसरे का मुँह देखना भी अच्छा नहीं लगता। यह सब लेखक ने अपने उपन्यास 'अपना-अपना आकाश' में दिखाया है । "वह अनमनी-सी टैरेस के एक कोने पर खड़ी बड़ी देर तक यही सब सोचती रही । सोचती रही कैसा घर है यह.... घर की एक दुनिया नहीं है, बल्कि घर के सब लोगों की अलग-अलग दुनिया बन गई है । घर में किसी का मन नहीं लगता। घर के बाहर सब अपनापा खोजते भटक रहे हैं । माँ भी, डैडी भी और वह स्वयं भी । ऐसा क्यों हो गया है? क्या ऐसा होना अच्छा है? क्या ऐसा ही होता है? प्रिया जितना ज्यादा इस पर सोच रही है, उतनी ही ज्यादा भटकती जा रही है ।"[2] पत्नी, माता-पिता, भाई-बहनों को अपने साथ एक ही मकान में रखकर जो हालात बनते हैं, उन्हें 'भ्रमभंग' का चंदन भुगत चुका है । अपने परिवार के साथ जी-जान से प्यार करने वाला, उन्हें ऊपर उठाने की अपनी जिम्मेदारी को समझने वाला चंदन अपने परिवार वालों की टुच्ची मनोवृत्ति से तंग आकर सम्बन्ध-विच्छेद करने का निर्णय लेता हुआ सोचता है, "इस माँ के कारण मुझे क्या-क्या कितना सहना पड़ा है । अकेला होना पड़ा है । यहाँ तक कि अब हार्ट-ट्रबल...। शान्त हो जाओ

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (काँचघर), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 342
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (अपना-अपना आकाश), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 190

चन्दन... हैव ए रिलैक्स्ड माइण्ड। तुम्हें आवश्यकता है । अपने लिए । शुभी के लिए । आभा और आरती के लिए....।"[1]

देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'इसीलिए' में भी पारिवारिक विघटन को दिखाया है कि परिवार का कोई भी सदस्य एक-दूसरे का नहीं बन पाता जिससे वे किसी दूसरे की ओर देखते हैं और वह भी उनका नहीं बन पाता । "मेरा अपना कोई नहीं बन पाया- न पिताजी, न माँ और न भाई । संयोग से तुमसे मिलना हो गया। तुमसे मिलते ही मुझे लगा था कि मैं अब अकेला नहीं रह गया हूँ। कोई है, जिसके लिए मैं जी सकता हूँ और जिसके साथ बनी हुई जिंदगी जीयी जा सकती है ।

लेकिन तभी एक बवण्डर-सा तुम्हारा पत्र मिला । जिससे सारे संजोए हुए तिनके बिखरकर छितरा गए । इस तूफान के बाद अब कहीं कोई संभावना नहीं दिखती । चारों तरफ एक बियाबान घिर गया-सा लगता है और उस बियाबान के बीच बन्द आँखों की पुतलियों में शोले उगते महसूस होते हैं।"[2]

इस प्रकार देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में पारिवारिक विघटन के कारणों को दिखाया है कि मध्यमवर्गीय लोग शैक्षणिक प्रगति के कारण संयुक्त परिवार में स्थापित नहीं हो पाते जिससे परिवार के बड़े-बूढ़े दुखी जीवन व्यतीत करते हैं । औद्योगिक कारखानों के कारण नगरों और महानगरों में बढ़ती हुई आबादी के कारण आवास की समस्या पैदा होती है जिससे संयुक्त परिवार नहीं बन पाते और पारिवारिक विघटन बढ़ता जाता है । एक परिवार में रहने वाले कई सदस्यों का आपसी वैमनस्य भी पारिवारिक विघटन का कारण बनता है जिससे वे एक-दूसरे का मुँह देखना भी पसन्द नहीं करते । यदि मध्यमवर्गीय लोगों को घर में प्यार नहीं मिलता तो वे बाहर प्यार ढूँढते

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (भ्रमभंग), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 212
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 55

हैं लेकिन बाहर भी उन्हें प्यार नहीं मिल पाता, इसलिए वे हर समय उदास और हताश जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर होते हैं ।

3.4 नारी समस्याओं का चित्रण

नारी समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । किसी भी समाज की श्रेष्ठता का निर्णय मुख्यत: समाज में नारी की स्थिति पर निर्भर रहता है । नारी समाज की उन्नति-अवनति का द्योतक बन जाती है । प्राचीन धर्मशास्त्र ने उस पर अनेक प्रतिबंध लगा दिए थे । मनु ने भी कहा था कि उसे बचपन में माता-पिता, जवानी में पति के और बुढ़ापे में लड़के के अधीन रहना चाहिए । फलत: नारी का जीवन अभिशाप बन गया था । समाज तथा परिवार में नारी को पुरुषों की तुलना में हेय समझा जाता है । लड़के की पैदाइश पर जहाँ प्रसन्नता प्रकट की जाती है वहीं लड़की पैदा होने पर हाय-तौबा मच जाती है। परिवार में लड़के की तुलना में लड़की को कम लाड़-प्यार मिलता है । अत: बचपन से ही उसमें हीन-ग्रन्थि उत्पन्न होती आई है और वह जीवन भर अत्याचारों को चुपचाप सहती रहती है । लेकिन हिन्दी उपन्यास समाज सुधार की भावना को लेकर इस क्षेत्र में आ गया । देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में सबसे अधिक मध्यमवर्गीय नारी की समस्याओं का चित्रण किया है ।

देवेश के उपन्यासों में पति-पत्नी संबंध को लेकर समस्याएँ उठाई गई हैं। महानगरीय नयी चेतना सम्पन्न नारी का कार्यक्षेत्र घर के अतिरिक्त बाहर भी अर्थार्जन हेतु हो गया है । परिणामस्वरूप स्त्री-पुरुष संबंधों की समस्या ज्वलंत रूप में उभर रही है। 'शून्य से शिखर तक' उपन्यास में वैशाली के माध्यम से नवयुग की नारी की नयी चेतना को वस्तुपरक भूमिका पर प्रतिष्ठित किया गया है । 'अन्तत:' उपन्यास में नारी-पुरुष सम्बन्धों को लेकर अर्न्तद्वन्द्व और उसके निर्णय की वस्तुपरक अभिव्यक्ति उपन्यासकार ने अत्यन्त सफलता से चित्रित की है तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की जटिलता को कलात्मक अभिव्यक्ति दी है । यहाँ सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ मानवीय सम्बन्धों का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। अन्तत: उपन्यास में महानगरीय जीवन के बीच स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का बहुत ही कलात्मक ढंग से चित्रण हुआ है ।

वसुधा संवेदनशील तथा आधुनिक मध्यमवर्गीय महिला है । पति अतुल से सम्बन्ध-विच्छेद होने पर पूर्वपरिचित राघवन से वह संबंध जोड़ती है जो उसकी सहायता करता है । इन्दिरा प्रेस के सम्पादक पंकज पसरीचा से उसका परिचय होता है । वसुधा उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा और उदात्त विचारों से प्रभावित होकर उसके प्रति आकर्षित होती है । पंकज पसरीचा की पत्नी पद्मा उसे छोड़कर किसी दूसरे व्यक्ति के साथ भाग जाती है । अतः पसरीचा वसुधा से अपना मित्र बनने का प्रस्ताव रखता है । वसुधा को पुरुष का आधार चाहिए और पसरीचा को स्त्री की सहानुभूति । स्त्री के लिए पुरुष और पुरुष के लिए स्त्री-साहचर्य की अपेक्षा अत्यन्त स्वाभाविक है । भले ही दोनों आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र और स्वावलंबी हों । वसुधा-पसरीचा की मित्रता से राघवन के स्वार्थों को आघात लगता है क्योंकि राघवन वसुधा के पैसों से नया फ्लैट खरीदना चाहता था और किसी न किसी बहाने उसे अपने पास रखकर उसके संवेदनशील सहज यौवन का भोग भी करना चाहता है । असहाय की स्थिति में वह राघवन से संबंध रखती थी लेकिन पसरीचा से मित्रता होने पर उसमें एक साहस आता है और स्वार्थी राघवन से संबंध तोड़ देती है । पुरुष के स्वार्थ को वह बर्दाश्त नहीं कर पाती । उसे एक ऐसे मित्र की तलाश है जो उसका हमसफर साथी बनने योग्य हो । इसी बीच उसकी सहेली शालिनी के माध्यम से युवक सुभाष के साथ वसुधा का परिचय होता है । वह हमउम्र, आकर्षक व्यक्तित्व तथा खुले व्यवहार वाले सुभाष की ओर आकर्षित होती है। उसके साथ संबंध रखने की बात सोचती है । उसे अपना दोस्त बनाना चाहती है लेकिन शालिनी सुभाष के चरित्र को अच्छी तरह से जानती है। इस कारण वह वसुधा को सुभाष के साथ संबंध न रखने की सलाह देती है।

जीवन-साथी से इप्सित अपेक्षाएँ जब भंग हो जाती हैं तब वैवाहिक संबंधों में खट्टापन आ जाता है । वसुधा और पसरीचा की मानसिकता इसके प्रमाण हैं । अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक-दूसरे का इस्तेमाल करने का सामाजिक अधिकार विवाह-संस्था के लिए घातक सिद्ध होता है । संबंधों की स्वस्थता के लिए एक-दूसरे की स्वतन्त्रता और सहमति की जरूरत

होती है। दूसरों की सलाह पर तुरन्त स्वीकृति संबंधों की ट्रेजिडी का मुख्य कारण है । अत: वसुधा पसरीचा से संबंध स्थापित करने के निर्णय के लिए एक साल तक विचार करती है । वसुधा का चरित्र स्वच्छन्द प्रेम संबंधों की कहानी मात्र नहीं है, स्त्री-पुरुष संबंधों में मन की निकटता भी आवश्यक होती है । पंकज कहता है- "देखो वसुधा मन की निकटता ही मूल बात है । यही निकटता स्त्री और पुरुष के संबंधों में एक बिन्दु पर आकर शरीर की निकटता में बदल जाती है। शरीर मन से अलग कहाँ है पर ऐसे संबंधों में शरीर तो गौण हो जाता है ।"[1]

पंकज पसरीचा वसुधा के नाम स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर अपने विचार प्रकट करता हुआ पत्र लिखता है- "किसी का किसी पर कोई हक नहीं होता । सब स्वतंत्र हैं । अपनी जरूरतों के अनुसार कुछ भी करने के लिए आजाद हैं । अपने मूल्य और अपनी मर्यादाएँ सबको व्यक्ति अपनी जरूरतों के अनुसार ही बनाता है। मैंने अपनी जरूरत के अनुसार अपने मूल्य और मर्यादाएँ निश्चित की हैं, वे न तो समाज विरोधी हैं, न व्यक्ति विरोधी।"[2]

'शून्य से शिखर तक' उपन्यास में वैशाली और विलास के संबंध रेखांकित हुए हैं । वैशाली और विलास देवेश जी के विचारों के संवाहक चरित्र हैं । इन चरित्रों के माध्यम से उन्होंने स्त्री-पुरुष के परस्पर संबंध और उनके साहचर्य पर अपने विचार प्रकट किए हैं। वैशाली और विलास के सम्बन्धों में पूर्ण आत्म-समर्पण और एक- दूसरे के लिए निष्ठा भाव है । व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर वे परस्पर आत्मीयता का भाव रखते हैं ।

भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का यह नया आयाम स्वीकार्य नहीं हो सकता क्योंकि वर्तमान व्यवस्था में जब कभी कोई नारी इस

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (अन्तत:), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 386
2. वही, पृ० 389

तरह का कदम उठायेगी तो उस पर लांछन लगेंगे । संक्रमण काल में यह स्वाभाविक भी है । देवेश जी ने इन चरित्रों के माध्यम से यह सूचित किया है कि "अगर नारी को पुरुष की जकड़न से मुक्त होना है, तो उसे इन लांछनों को, बदनामी को सहना पड़ेगा । तभी एक स्वतन्त्र और अपनी इयता की रक्षा करने वाली औरत पैदा होगी ।"[1] इस संदर्भ में 'शून्य से शिखर तक' उपन्यास में मध्यमवर्गीय वैशाली के माध्यम से आधुनिक नारी की नई चेतना, उसकी जागरूकता और व्यक्तित्व निर्माण के लिए नयी दिशाओं की ओर अग्रसर होती नारी का यथार्थ चित्रण किया गया है।

'इसीलिए' उपन्यास की नारी पात्र प्राध्यापिका वर्षा पत्रकार रघुवंशी के साथ विवाह सूत्र में न बंधकर मित्रता का संबंध रखती है। वह किसी कॉलेज में इतिहास की प्राध्यापिका है । समाज सेवा का कार्य भी करती है । वह स्वतंत्रचेता एवं आधुनिक सोच की व्यवस्था-विद्रोही कर्मशील नारी है । उसमें कार्य करने की अदम्य आकांक्षा और साहस है । बदनामी की परवाह न करते हुए हिम्मत से, ईमानदारी से वह पत्रकार रघुवंशी से आत्मीयता का संबंध स्थापित करती है । 'जनगाथा' उपन्यास में प्रो॰ मानुषी पत्रकार जोशी से विवाह न करते हुए उसके साथ अपने आत्मीय संबंधों और मित्रता का नाता कायम रखती है ।

देवेश ठाकुर लेखक होने के साथ-साथ स्वयं प्राध्यापक, शोध निर्देशक, परीक्षक, समीक्षक और पत्रकार भी हैं । अत: इन क्षेत्रों में कार्यरत प्राध्यापिका, छात्रा एवं कामकाज नारियों की मनोदशा का उन्हें अत्यन्त सूक्ष्म अनुभव है । 'प्रिय शबनम', 'काँचघर', 'जनगाथा', गुरुकुल', 'शिखर पुरुष' आदि उपन्यासों में उच्च शिक्षित मध्यमवर्गीय नारी का व्यक्तित्व किस प्रकार भ्रष्ट, अनैतिक तथा धूमिल होता जा रहा है । इसका यथार्थ चित्र इनकी रचनाधर्मिता में मिलता है ।

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र॰सं॰), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (शून्य से शिखर तक), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ॰ 224

'गुरूकुल' उपन्यास में डॉ॰ ओछेलाल के निर्देशन में एक छात्रा सुमन पीएच॰डी॰ कर रही है और थीसिस लिखने का कार्य डॉ॰ जैन पर सौंप दिया जाता है । ओछेलाल सुमन से कहते हैं- "प्रो॰ जैन को दिया है तुम्हारा लास्ट चैप्टर लिखने को । पिछले शनिवार को आने वाला था; अब पूरा करके ही लाएगा ।"[1]

'काँचघर' की विम्मू के पिता की मौत के बाद उसकी माँ सन्यासिनी बनकर हरिद्वार चली जाती है । दो बहनों के जिम्मेदारी, शिक्षा की कमी और पैंतीस वर्ष बीतने पर भी विवाह न होने के कारण उसे यह व्यवसाय शुरू करना पड़ता है - "मैंने बहुत चाहा मौसी, मुझे एक आदमी मिल जाए । दो जून खाने और दो जोड़ी कपड़ों के बदले में दिन भर उसका घर संभालूँ, उसके बच्चों को पालूँ-पोसूँ, उन्हें किसी लायक बनाऊँ ।"[2] यह सर्वसामान्य मामूली इच्छा भी जब पूरी नहीं होती तब वह अपना शरीर बेचना शुरू कर देती है ।

'शिखर पुरुष' उपन्यास में प्रो॰ नक्षत्रा के माध्यम से विधवा नारी की स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है । आज के माहौल में भी नारी की विधवा अवस्था दयनीय है । डॉ॰ नक्षत्रा विधवा होने पर कॉलेज में अध्यापन का काम करती है । उसकी सोच आधुनिक है । वह नयी चेतना सम्पन्न नारी है, साहसी भी है। वह आत्म-सम्मान एवं अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग भी है। फलतः वैधव्य प्राप्त होने पर वह पुनर्विवाह करना नहीं चाहती है क्योंकि विवाह के सुख को, पुरुष के साहचर्य को, उसकी प्रवृत्ति को वह अच्छी तरह भुगत चुकी है । वह बिना विवाह के ही अपना जीवन स्वतन्त्रता से, आत्मसम्मानपूर्वक व्यतीत करना चाहती है । लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि इस आधुनिक युग में वह अपने को सुरक्षित अनुभव नहीं कर पाती । आज की पुरुष प्रधान समाज-व्यवस्था में निराधार, पति-विहिन युवा तथा सुंदरी

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र॰सं॰), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (गुरुकुल), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ॰ 27
2. वही, देवेश ठाकुर रचनावली-1 (काँचघर), पृ॰ 406

की ओर देखने की दृष्टि वासनापूर्ण होती है तथा उसके विधवा एवं असहाय होने का अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाता है । मूलत: प्रश्न यह है कि आज भी पुरुषों की नजर में नारी मात्र भोग्यवस्तु या यौनतृप्ति का साधन मात्र ही रही है । पुरुष की स्त्री विषयक यह यौन दृष्टि वर्तमान सामाजिक जीवन में लगभग समस्त क्षेत्रों में दिखाई देती है ।

'जनगाथा' उपन्यास में प्राध्यापिका मानुषी पत्रकार जोशी के साथ मित्रता का नाता रखते हुए उसके पास रहती है । वह आजीवन अविवाहित रहती है। एक प्राध्यापिका होते हुए भी प्रचलित विवाह-प्रथा का विरोध करती है । वर्तमान विवाह व्यवस्था में नारी की अस्मिता तथा उसका व्यक्तित्व विकसित नहीं हो सकता। प्राध्यापिका वर्षा जीवन के प्रति बुद्धिवादी दृष्टिकोण अपनाती है। 'शिखर पुरुष' में कंचनबाला साहित्य की प्राध्यापिका है; हिन्दी विभागाध्यक्षा हैं । वह सही साथी की तलाश में भटकती रही लेकिन उसे मनपसंद जीवन-साथी नहीं मिल सका । ऐसी प्रौढ़ कुमारिकाएँ मुक्त-यौन संबंध का समर्थन करती हैं । परम्परागत नैतिक मूल्यों को वे ठुकराती हैं और बिनधास्त होकर भोगवादी जीवनदृष्टि को अपनाती हैं । वर्तमान सामाजिक जीवन में प्रौढ़ कुमारिका की समस्या और भी जटिल होती जा रही है ।

आज की मध्यमवर्गीय नारी अपने व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता एवं समान अधिकार के प्रति सजग है । आर्थिक दृष्टि से वह पहले की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र है । नारी का यह स्वतंत्र व्यक्तित्व ही पति-पत्नी के बीच संघर्ष का उत्तरदायी है । वर्तमान युग में पति-पत्नी के संबंधों मे तनाव आ गया है । महानगरीय जीवन में इस तनाव की सीमा तलाक तक पहुँच जाती है । महानगरीय जीवन में पति-पत्नी के सम्बन्धों की पवित्रता नष्ट होती जा रही है। पति और पत्नी वैवाहिक बन्धन में बँध जाते हैं लेकिन कहीं-कहीं पति वासनाग्रस्त, हिंसक और पशु बन जाता है । अत: नारी पति से दूर होकर दूसरे व्यक्ति के सम्पर्क में आती है और उसी की हो जाती है। वस्तुत: परिवार पति-पत्नी के संबंध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। ये संबंध परिवार को आदर्श एवं समृद्ध बनाते हैं ।

कुछ स्त्रियाँ भी ऐसी होती हैं जो अपने पति के होते हुए भी पराये पुरुष अथवा पूर्व प्रेमी से प्यार का चक्कर चलाती हैं । 'काँचघर' की मध्यमवर्गीय शोभा अपने अमीर, अफसर किन्तु हमेशा सफर पर रहने वाले पति से असन्तुष्ट होकर अपने पुराने प्रेमी प्रो॰ प्रशान्त से कहती है- "पहले तुम हफ्ते-पन्द्रह दिन में एक बार घर आकर जरूर मिल लेते थे । लेकिन मेरे नए घर में इन चार सालों में एक बार भी नहीं आए । जब वे शहर में नहीं होते तब तो आ ही सकते हो.... ।"[1] इस प्रकार शोभा अपने पति से मिली अतृप्ति को पूरा करना चाहती है ।

इस प्रकार देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्गीय नारियों की विभिन्न समस्याओं को उजागर किया है जिनसे नारी को इस पुरुष प्रधान समाज में स्वतन्त्रता नहीं मिल पाती और वह अपने जीवन में मानसिक रूप से भी परेशान रहती है । इन्होंने रूढ़िमुक्त, भोगवादी, बिनधास्त, स्वच्छ नारी की दमित वासनाएँ, कुण्ठाएँ एवं अकेलेपन की पीड़ा से संत्रस्त मन:स्थिति का चित्रण अपने उपन्यासों में यथार्थ रूप में किया है ।

3.5 स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण

वर्तमान अर्थ-व्यवस्था, औद्योगिक क्रान्ति, नारी-जागरण, नवीन शिक्षा प्रणाली तथा व्यक्तिवादी एवं स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के कारण स्त्री-पुरुष की परम्परागत धारणा में आज बदलाव आ गया है। आधुनिकता बोध ने समाज तथा मनुष्य को एक नया संस्कार दिया है कि इससे स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों की जड़ता टूटी है तथा भिन्न एवं नवीन अनुभूतियों का सूत्रपात हुआ है । आधुनिक पुनर्मूल्यांकित रचनाओं में स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों में जो चिन्तन हुआ है, परम्परागत नैतिक धारणाओं के अनुसार स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों में वहाँ हमारा सामुहिक अवेचतन मन निरंकुश सामन्तवादी और एकाधिकार से ग्रस्त रहा है ।[2]

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र॰सं॰), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (काँचघर), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ॰ 399
2. डॉ॰ पुष्पा रानी, आधुनिक रामकाव्य : पुनर्मूल्यांकन, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रब्यूटर्स, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण-2002, पृ॰ 246

स्त्री-पुरुष के आपसी सम्बन्धों में भी अन्तर्विरोधी विचारधारा पाई जाती है । एक ओर तो सामाजिक-राजनीतिक जीवन में संघर्षरत नारी को पुरुष के समकक्ष माना जाता है और दूसरी तरफ उसे मात्र भोग्या । वहाँ विकृतियाँ ही उभरकर सामने आती हैं । नारी को खुली हवा में साँस लेने का अधिकार है। वह उपेक्षित नहीं, उसकी मान-प्रतिष्ठता को स्वीकारा जाना आवश्यक है । उसका केवल वासनापरक चित्रण उसके समस्त सामाजिक स्वरूप पर आघात होगा। प्राचीनकाल से स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर विचार होता आ रहा है। साहित्य में उसका प्रतिबिम्ब दिखाई देता है । देवेश ठाकुर के उपन्यासों की नारी पुरुष को बना भी सकती है और बिगाड़ भी सकती है। 'प्रिय शबनम' के मंगल की अनुभूतियाँ कितनी यथार्थ हैं, "पुरुष के लिए औरत बहुत बड़ा मोह होती है, शायद सबसे बड़ा आकर्षण भी । लेकिन इस मोह में पड़ते समय यदि थोड़ा-सा रूककर सोच लिया जाए तो जिंदगी बन सकती है । गलत आधारों पर और भावावेश मे बने ये सम्बन्ध किसी बड़ी-से-बड़ी शक्ति को भी अतल में धकेल सकते हैं । यहाँ मुझ जैसे लोगों की कोई बिसात नहीं होती।"[1]

देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'इसीलिए' में मध्यमवर्ग के यथार्थ को दिखाते हुए कहा है कि पुरुष के साथ स्त्री का संबंध अनोखा होता है, पुरुष बिना स्त्री के नहीं रह सकता। वह उसके जीवन को अच्छी दिशा देती है । अवस्थी कहता है, "मीनाक्षी, तुम इस पूरे भरे-पूरे माहौल में रच बस गई हो। मेरा सब कुछ तुम्हारा हो गया है, मेरा सोना-जागना, उठना-बैठना, चलना-फिरना, सब कुछ तुम्हारी छाया हो गया है । मेरी जिन्दगी के बहाव को तुमने दिशा दी है । तुम्हें ही इसे किनारे पर लगाना है ।"[2]

देवेश ठाकुर ने बताया है कि मानव अकेला नहीं रह सकता । उसे किसी न किसी की आवश्यकता हर समय रहती है और सबसे अधिक स्त्री

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (प्रिय शबनम), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 10
2. वही, देवेश ठाकुर रचनावली-2, (इसीलिए), पृ० 45

की । 'इसीलिए' का मध्यमवर्गीय अवस्थी कहता है "और मैं जानता हूँ, अकेली जिंदगी, जिंदगी नहीं होती । जिंदगी की लाश होती है । अब चाहे यह जिंदगी हो या जिंदगी की लाश- इसमें तुम्हारा भी भाग है..... और हमेशा रहेगा ।"[1] देवेश ठाकुर ने आगे बताया है कि इंसानों में संवेदना होती है और उससे ही स्मृतियाँ बनती हैं जो मरने के बाद भी उन्हें जीवित रखती हैं चाहे वह कुछ क्षणों के लिए ही क्यों न हो । "मीनाक्षी.... हम दोनों इंसान हैं, और इंसानों में संवेदना होती है । और होती है स्मृति.... जो मरने के बाद भी उन्हें जीवित रखती हैं । तुम मेरे लिए हमेशा जीवित हो.... क्योंकि कुछ क्षणों के लिए ही सही, तुमने मुझे अपना स्वर्ग दिया है ।"[2] यहाँ पर अवस्थी मीनाक्षी के साथ बिताए कुछ दिनों को याद करके उसके सुख का अनुभव कर रहा है ।

आधुनिक युग में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में युवक-युवतियों के उच्छृंखल प्रेम के सम्बन्ध सर्वत्र दिखाई देते हैं । 'काँचघर' के सुहास और सुमी इसके प्रतिनिधि चरित्र हैं । जो प्यार करना, होटल जाना, ड्रिंक्स लेना आदि सब कुछ करना चाहते हैं सिर्फ शादी नहीं कर सकते क्योंकि उसमें परिवेश, माता-पिता की इच्छा आदि रूकावटें आती हैं । कुछ माता-पिता अपनी जवान बेटियों को उनके प्रेमी के साथ 'फ्रेंडशिप' रखने की इजाजत देते हैं । जैसे 'काँचघर' की कंची के पिता इजाजत देते हैं । 'काँचघर' की सेक्रेटरी लड़की, 'गुरुकुल' की सुमन अहलुवालिया, मिसेस नीला सबनीस जैसी औरतें ऊँची डिग्री, नौकरी अथवा प्रमोशन के लिए पुरुषों से सम्बन्ध बनाए रखती हैं । प्रो॰ सुमन शाह (भ्रमभंग), दिव्या सूद (अपना-अपना आकाश) आदि जिंदगी के खालीपन को भरने के लिए पुरुषों से सम्बन्ध बनाती हैं ।

इस प्रकार देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्गीय स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को बड़ी बारीकी से यथार्थ रूप में चित्रित किया है ।

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र॰सं॰), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ॰ 53
2. वही, पृ॰ 53

3.6 पति-पत्नी संबंधों का चित्रण

परिवार में पति-पत्नी संबंध महत्त्वपूर्ण होते हैं । ये संबंध परिवार को आदर्श एवं विकसित पथ पर लाने के लिए आवश्यक होते हैं । भौतिक युग में इन संबंधों में तनाव आ गया है । ग्रामीण जीवन में यह परिवर्तन नाममात्र हैं जबकि शहरी जीवन में इस परिवर्तन की सीमा तलाक तक आ पहुँची है । नारी जीवन में पति-पत्नी के संबंधों की पवित्रता नष्ट होती जा रही है । पति अन्यत्र वैवाहिक बन्धन में बँध जाते हैं, किन्तु कहीं-कहीं पति केवल वासनाग्रस्त हिंसक पशु नजर आता है । अतः नारी पति से दूर होकर दूसरे व्यक्ति के सम्पर्क में आती है और उसी की ही हो जाती है। देवेश ठाकुर के उपन्यास 'भ्रमभंग' का चंदन नेगी और उसकी पत्नी शुभी, 'इसीलिए' के पत्रकार रघुवंशी और प्रो॰ वर्षा, 'काँचघर' के प्रो॰ देबू और डॉ॰ शीला, 'जनगाथा' के डॉ॰ शीतांशु जोशी और अनुराधा आदि आदर्श पति-पत्नीं हैं, जो एक दूसरे के भावों को समझकर, सही मायने में सहयोगी बन जाते हैं, जिनका पारिवारिक जीवन सुख से भरा है । लेकिन कुछ पति-पत्नी ऐसे हैं, जिनमें से पति अपनी पत्नी के रहते हुए बाहरी औरत से प्यार करते हैं । जैसे 'काँचघर' की कंची के नाटककार पिता और मिसेज दमयन्ती सांवत, 'गुरुकुल' के डॉ॰ ओछेलाल और मिस सुमन अहलुवालिया, डॉ॰ जैन और मिस नीला सबनीस, प्रो॰ तिवारी और डी-सिल्वा ऐसी औरतें भी हैं जो अपने पति के होते हुए भी पराये पुरुष अथवा पूर्व प्रेमी से प्यार का चक्कर चलाती हैं । 'काँचघर' की शोभा अपने अमीर, अफसर किन्तु हमेशा सफर पर रहने वाले पति से असन्तुष्ट रहकर अपने पुराने प्रेमी प्रो॰ प्रशान्त से कहती है। "पहले तुम हफ्ते-पन्द्रह दिन में एक बार घर आकर जरूर मिल लेते थे । लेकिन मेरे नए घर में इन चार सालों में एक बार भी नहीं आए। जब वे शहर में नहीं रहते, तब तो आ सकते हो ।"[1] इस प्रकार शोभा अपने पति से मिली अतृप्ति को पूरा करना चाहती है।

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र॰सं॰), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (काँचघर), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ॰ 399

देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'इसीलिए' में पत्नी का अपने पति के प्रति प्रेम भी दिखाया है कि मध्यमवर्गीय पत्नी अपने पति से पूरी उम्र पिटती रही और अपमानित होकर भी उसकी मृत्यु के बाद भी उदास और परेशान रहती है क्योंकि उसे किसी भी रूप में अपने पति की आवश्यकता रहती है, चाहे उसने उसके साथ कैसा भी व्यवहार किया हो । यह देखकर उसका पुत्र अवस्थी कहता है "पिता जी की मौत के बाद से माँ बहुत उदास रहने लगी है । उदास और गुमसुम । पहले इस घर की दिवारों से भय चिपका रहता था- भय और आतंक । अब यहाँ उदासी और खालीपन भर गया है ।"[1] इस प्रकार पति के बिना पत्नी अपने को अधूरा समझती है और पति भी पत्नी के बिना अधूरा होता है, वह उसकी जीवन- संगिनी होती है और उसका हर समय ध्यान रखती है। देवेश ठाकुर के उपन्यास 'इसीलिए' में अवस्थी अपनी शादी के बाद पत्नी के साथ किस प्रकार के अनुभव हुए, वह बताता है । "इन दिनों बार-बार एक पवित्र-सी अनुभूति होती रही है । चन्द्रा की जिंदगी के साथ अपनी जिंदगी को जोड़कर देखने से एक अजीब-सी शक्ति मिलती है। वह सचमुच मेरा कितना ध्यान रखती है । उसे पौधे उगाने का कितना शोक हैं । कितनी सारी 'लव बड्र्स' उसने घर में भर ली हैं । लव-बड्र्स मैनाएँ और हरियल तोते । इस घर में कितने सारे जीव हो गए हैं । स्टीरियो पर नये-नये गीत सुनना उसे अच्छा लगता है। इन दिनों उसका स्वास्थ्य भी ठीक चल रहा है । घर को उसने कितनी अच्छी तरह सजा दिया है । कहीं कोई अव्यवस्था नहीं । ऑफिस में भी मन घर लौटने को हुमकता रहता है। शाम होते ही महसूस करने लगता हूँ, चन्द्रा चाय की ट्रे तैयार करके मेरे इन्तजार में बैठी होगी ।"[2] इन बातों के साथ-साथ पति-पत्नी दोनों को एक-दूसरे की चिंता भी रहती है तथा किसी भी प्रकार की समस्या पर दोनों बेचैन भी हो जाते हैं । 'इसीलिए' उपन्यास में चन्द्रा की तबीयत खराब होने पर उसका पति

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 20
2. वही, पृ० 73

अवस्थी अपनी जिम्मेदारी निभाता है और मन से दु:खी हो जाता है लेकिन साहस भी रखता है क्योंकि उसे अपनी पत्नी को ठीक करवाना है। "सुबह बाहर निकल ही रहा था कि चन्द्रा की तबीयत एकाएक खराब हो गई । दर्द से सारा शरीर अकड़ गया । जल्दी से डॉक्टर बुलाया । उसने कहा अस्पताल ले जाओ ।

चन्द्रा को टैक्सी में डालकर अस्पताल पहुँचा । डॉक्टर ने जाँच की । बतलाया-घबराने की कोई बात नहीं है, अभी समय है। कल तक देखेंगे, नहीं तो सिजेरियन करना होगा ।

अभी-अभी अस्पताल से लौटा हूँ । हे भगवान, सब ठीक हो। कम-से-कम मेरा एक सपना तो पूरा हो । मुझे पूरा विश्वास है, सब ठीक होगा ।"[1] इसी प्रकार 'जनगाथा' उपन्यास में पत्नी को अपने पति की चिंता है जो दिल का मरीज है। वह उसे ज्यादा सोचने से मना करती है । "शोभा ने करवट बदली है। उसके वक्ष में मुँह डालकर आँखें बन्द कर लो । शायद कुछ राहत मिले। दूसरे कमरे में बच्चे सो रहे हैं । प्रिय शिवनाथ, तुम ज्यादा मत सोचा करो । वैसे भी दिल के मरीज हो । चलो, लाइट ऑफ कर दो।"[2]

पत्नी अपने पति से हमेशा अपने पास रहने का हक माँगती है लेकिन पति द्वारा अपनी पत्नी को इतना समय नहीं दिया जाता जितना वह चाहती है क्योंकि इस महँगाई के दौर में पति को बहुत काम करने पड़ते हैं और उसकी भी अपनी इच्छाएँ होती हैं जिससे कई बार पति-पत्नी में कटुता आ जाती है। यह देवेश ठाकुर के उपन्यास 'जनगाथा' में दिखाया है "तुम पत्नी होने के नाते मुझसे मेरा समय चाहोगी । यह स्वाभाविक है । हर पत्नी यही चाहती है। लेकिन मैं यह बात साफ कर दूँ कि मेरे पास समय नहीं है। बहुत- से काम

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 86
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 284

हैं-बड़े और छोटे-जिन्हें मैं जल्दी-जल्दी पूरा कर लेना चाहता हूँ । तुम मुझसे समय मत माँगना । वैसे अपनी जिम्मेदारी मैं समझता हूँ । व्यक्ति के रूप में भी और पति के रूप में भी । लेकिन साथ ही मैं यह भी चाहता हूँ कि घर आने से पहले तुम मेरी जिम्मेदारियों को समझ लो । ऐसा न हो, कि तुम बड़ी-बड़ी इच्छाएँ और सपने लेकर आओ और बाद में मेरे साथ उन्हें पूरा न कर सको और फिर पछताने लगो । मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण किसी को दु:ख पहुँचे या कोई पछताए ।"[1] इस प्रकार पति पहले से ही स्पष्ट कर देना चाहता है कि वह उसे ज्यादा समय नहीं दे सकता और यदि वह ज्यादा इच्छाएँ न पाले तो उनका जीवन अच्छा हो सकता है लेकिन यदि इच्छाएँ रहेंगी तो पछतावे के सिवा कुछ न मिलेगा । दूसरी ओर 'गुरुकुल' उपन्यास की मध्यमवर्गीय मिसेज नीला सबनीस पीएच०डी० की डिग्री तथा नौकरी हासिल करने के लिए जैन के कहने पर किसी अन्य को भी कंपनी दे देती है ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि पति-पत्नी संबंध बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं । इन सम्बन्धों को बनाए रखना बहुत आवश्यक होता है । देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में पति-पत्नी के आदर्श रूप को भी दिखाया है जिसमें पति-पत्नी अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे होते हैं तथा दूसरी ओर दिखाया गया है कि कुछ पति-पत्नी अपने जीवन साथी के होते हुए भी दूसरों से संबंध बनाते हैं । पत्नी का अपने पति से अपमानित होना भी उनके उपन्यासों में दिखाया गया है लेकिन इसके बावजूद भी पत्नी को अपने पति से प्रेम करते हुए दिखाया गया है । इन्होंने अपने उपन्यासों में यह भी दिखाया है कि मध्यमवर्गीय पति-पत्नी एक-दूसरे के सहयोगी होते हैं और सुख-दु:ख में एक दूसरे का सहारा बनते हैं । इसके साथ-साथ यह भी दिखाया है कि पत्नी अपने पति से अपने पास रहने तथा समय देने का हक माँगती है लेकिन पति द्वारा उसे पहले से ही अच्छी तरह समझा दिया जाता है कि मुझ पर

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 299

बहुत-सी जिम्मेदारियाँ हैं और मैं अपने तरीके से उन्हें पूरा करूँगा । पति-पत्नी के स्वाभाविक जीवन को भी देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में दिखाया है ।

3.7 स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण

स्वच्छंद प्रेम ऐसी समस्या है, जो जाति-व्यवस्था पर सीधा प्रहार करती है । आजकल के अधिकांश उपन्यासों में प्रेम के नवीन नैतिक मूल्य को स्थापित करने की सशक्त अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति उत्तरोतर विकसित हो रही है । प्रेम के सम्बन्ध में समाज की दृष्टि अत्यन्त उदार होती जा रही है तथा उसके ऊपर से सामाजिक बन्धन उड़ते जा रहे हैं । विश्वविद्यालयों की रंगीन दुनिया तथा महानगर पर आधारित कथानकों के प्रेम और विवाह को दो विरोधी तत्त्व माना गया है । देवेश ठाकुर के 'भ्रमभंग' उपन्यास की मध्यमवर्गीय प्रो॰ सुमन शाह नायक प्रो॰ चन्दन से प्यार करती है । उसे अपना बेडरूम फ्रैंड बनाती है किन्तु शादी और बच्चे नहीं चाहती । 'जनगाथा' के प्रो॰ शिवनाथ की छात्रा सुन्दरी शुभांगी गडकरी उनसे शादी किए बिना उसकी पत्नी से, जो भी प्यार बच जाए, उसे पाने की अभिलाषा करती है । 'काँचघर' की सुमी सुहास के साथ प्यार करती है किन्तु विवाह करना नहीं चाहती । अपने विचारों को स्पष्ट करती हुई वह कहती है, "शादी के बाद हम दोनों में वह तड़प कहाँ रह जाएगी? मैं इस तड़प को हमेशा-हमेशा के लिए बनाए रखना चाहती हूँ । इसलिए शादी करके तुम्हारे लिए एक जिन्दा लाश नहीं बन जाना चाहती।.... प्यार बहुत ऊँची चीज है सुहास । उसे शादी के साथ जोड़कर हल्का मत बनाओ ।.... तुम्हारे लिए भी प्यार का मतलब शरीर होता है।?.... सुहास, कब्जा करने की चाहना दरिदंगी है । तुम इस दरिदंगी से ऊपर उठो । मुक्त बनो । बी फ्री और दूसरों को फ्री रहने दो ।"[1]

देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में स्वच्छन्द प्रेम के अनेक रूप दिखाए हैं जिनमें मध्यमवर्ग प्रमुख रूप से आया है । 'इसीलिए' उपन्यास में मीनाक्षी स्वच्छन्द रूप से प्रेम करती है और अपने प्रेमी के साथ घुमती-फिरती है तथा

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र॰सं॰), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (काँचघर), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ॰ 418-419

प्रेम का आनंद लेती है । इस पर अवस्थी कहता है । "मीनाक्षी समय की बड़ी पाबन्द है । उसने ठीक छह बजे चर्चगेट पर मिलने को कहा था । ए०एच० ह्वीलर के स्टाल के पास । वह समय पर वहाँ पहुँच गई । आज वह कुछ ज्यादा ही सुंदर लग रही थी । कुछ देर तक हम दोनों मेरीन ड्राइव पर घूमते रहे फिर 'टॉक ऑफ दी टाउन' में जाकर बैठ गए । यह जगह कितनी आरामदेह है, कॉफी के प्यालों के साथ देर तक समुद्र देखते जाओ, घण्टों बैठे रहो तो भी मन नहीं भरता ।"[1] फिर आगे अवस्थी कहता है कि "तुम्हारी देह की सुवास । तुम्हारी बाँहें । बाँहों का सुथरापन । सुथरी-धुली केश राशि । कटि के वलय । वक्ष के सूरजमुखी । सूरजमुखी-सा किरण नहाया मुख । मुख का गुलाबीपन । पंखुरियों से होंठ । होंठों की मिठास । मिठास की झील । झील-सी आँखें । आँखों का मधुमास । मधुमासों का संकेत। तुम्हारा पोर-पोर मेरी जान ले लेता है मीनू ।"[2]

देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'अपना-अपना आकाश' में प्रकाश और प्रिया के स्वच्छन्द प्रेम को दिखाया है तथा एक-दूसरे की आन्तरिक भावना को प्रेम के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है कि प्रेम में प्रेमी अपने को अपनी प्रेमिका के साथ बहुत अच्छा महसूस करता है लेकिन जब उससे बिछुड़ने लगता है तो वह स्थिति उसके लिए असहनीय बन जाती है । यहाँ पर प्रकाश का प्रिया के प्रति स्वच्छन्द प्रेम दिखाया गया है । "फिर दोनों के बीच एक खामेशी का सिलसिला शुरू हो जाता है । लेकिन दोनों यह महसूसते रहते हैं कि उनके मन की धड़कनें आपस में खूब बतिया रही हैं.... वे उन्हें बतियाने देते हैं ।

जल्दी ही बांद्रा टॉकीज आ जाता है । प्रकाश उतरने को होता है लेकिन उसका मन उतरने को नहीं हो रहा । वह प्रिया की ओर देखता है ।

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 29
2. वही, पृ० 39

सोचता है- काश, प्रिया उससे रूकने के लिए कह लेती.... लेकिन प्रिया चुप है.... उसकी आँखों में एक अनुराग है.... अनुराग का अपनापन ।"[1]

इस प्रकार देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्ग के यथार्थ को बताते हुए उसके स्वच्छन्द प्रेम के विभिन्न रूपों को चित्रित किया है । इस वर्ग की अधिकतर नारियाँ और पुरुष शादी के लिए प्रेम नहीं करते बल्कि अपना समय व्यतीत करने के लिए प्रेम करते हैं और इसके साथ-साथ कुछ नारियाँ मजबूरीवश प्रेम करती हैं तथा अपने ऊपर एक जाल-सा अनुभव करती हैं । कई स्थानों पर स्वच्छन्द प्रेम को चित्रात्मक रूप में भी प्रकट किया गया है।

3.8 फ्री लव, फ्री सेक्स का चित्रण

आधुनिक समाज में इस प्रकार की माँग धीरे-धीरे उभर रही है और स्त्री तथा पुरुष प्रणय के क्षेत्र में निर्बाध होना चाहते हैं । मध्यमवर्गीय युवावर्ग तो किसी भी प्रकार के बंधनों को स्वीकृत करना नहीं चाहता । 'काँचघर' की सुमी इसका प्रतिनिधि चरित्र है। 'अपना-अपना आकाश' का उच्च मध्यमवर्गीय अविनाश चड्ढा प्रिया के डैडी के दोस्त का बिगड़ैल बेटा एक साथ प्रमिला, मनोरमा, शेफाली आदि के साथ प्यार और रोमांस करता है । 'काँचघर' की सुमी सुहास को होटल ले जाती है और हार्ड ड्रिंक्स लेती है। अपनी गैर-हाजिरी में सुहास को सिनेमा देखने के लिए उर्वशी को साथ ले जाने के लिए कहती है, "उर्वशी को लेकर चले जाना और जब हॉल की बत्ती बुझ जाये तो सोच लेना, मैं तुम्हारी बगल में बैठी हूँ ।"[2] 'इसीलिए' उपन्यास में प्रेमिका अपने प्रेमी से विवाह के बिना ही सैक्स के लिए कहती है । "एक आखिरी बात और । जब तक तुम सैटिल नहीं हो जाते, जब तक तुम्हारी

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (अपना-अपना आकाश), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 118
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (काँचघर), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 303

शादी नहीं हो जाती, तब तक जब चाहो, मेरे पास आ सकते हो । अपनी शैया को तुम्हारे साथ बाँटने में मुझे खुशी ही होगी ।"[1]

इस प्रकार देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में दिखाया है कि मध्यमवर्गीय लोग फ्री लव और फ्री सेक्स चाहते हैं और वो भी बिना किसी बन्धन के । जिससे निरन्तर नैतिकता के बन्धन ढीले पड़ते हुए नजर आते हैं ।

3.9 वेश्या-व्यवसाय का चित्रण

परम्परागत वेश्यावृत्ति का स्वरूप बदला हुआ है । महानगर की चकाचौंध और आकर्षण से भरी इस दुनिया में सिर्फ पैसा कमाने के लिए या अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए नारी वेश्या बनती है और कभी-कभी मजबूरी में भी उसे वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ती है । बड़े-बड़े होटलों में, क्लबों में उच्चशिक्षित मध्यमवर्गीय नारियाँ अपने शरीर का सौदा करती हैं । आधुनिक भाषा में इन्हें 'कॉलगर्ल्स' कहते हैं ।

भारतीय समाज में वेश्या-व्यवसाय की समस्या बहुत प्राचीन है। वेश्या-व्यवसाय मानव समाज और संस्कृति का कोढ़ है । इस समस्या पर समाजशास्त्रियों ने अपने संशोधन द्वारा कहा है कि आर्थिक कारण ही इसकी जड़ हैं ।

भारतीय समाज व्यवस्था में विधवा प्रथा, दहेज प्रथा, बहुपत्नीत्व आदि अनेक सामाजिक कुप्रथाओं में पिसती हुई स्त्री के लिए एकमात्र आर्थिक स्वावलम्बन का यही उपाय शेष बचा था कि वह वेश्या जीवन को स्वीकार कर ले ।

देवेश ठाकुर के उपन्यासों में अधिक मात्रा में महानगरीय जीवन की प्रस्तुति हुई है । बढ़ती आबादी के कारण महानगरों में अनेकानेक समस्याएँ पैदा होती हैं, जिनका विवेचन और विश्लेषण इनके उपन्यासों में हुआ है । वेश्या-व्यवसाय भी इनमें से एक है। उनका मानना है कि जन्म से कोई वेश्या

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 51

नहीं होती । मनुष्य वेश्याओं से प्यार करता रहता है किन्तु अपनाने का समय आने पर दाएँ-बाएँ देखता है। 'इसीलिए' की मध्यमवर्गीय मीनाक्षी दलाल जैसी सुन्दर किन्तु बेसहारा लड़की को रिश्ते के चाचा के साथ बिस्तर बाँटना पड़ता है । तब उसे मजबूरी से अपने सुन्दर शरीर को मुफ्त में अधिक शोषण न होने देने का निर्णय लेना पड़ता है। "मुझ जैसी लड़की 'कॉलगर्ल' ही हो सकती थी । न होती तो इस समाज के कुत्ते और भेड़िये मुझ अकेली लड़की को अंकल की तरह मुफ्त ही में नोच खाते । आजादी के बाद इस देश में जो संस्कारहीन नवधनिक वर्ग उभरा है, वही मेरा ग्राहक है ।"[1]

कुछ युवतियाँ प्यार के इन्द्रधनुषी सपनों में प्रेमी की मीठी-मीठी बातों में फँसकर स्वयं को समर्पित कर देती हैं । समय आने पर वह उनसे दुत्कारी भी जाती है और मजबूरन उन्हें वेश्या-व्यवसाय को अपनाना पड़ता है । उनके सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं होता। 'काँचघर' की माया इसका उचित उदाहरण है । प्रेमी द्वारा ठुकराए जाने के बाद उसके पास अपने गर्भ को लेकर इस व्यवसाय में आने के सिवा कोई दूसरा चारा भी नहीं रह जाता क्योंकि इस समाज में ऐसी सुन्दर औरतों का खैरियत से जीना मुश्किल है । वह कहती है- "हम जैसी जवान, अकेली औरतों के लिए अमूमन वे रास्ते बन्द ही रहते हैं ।"[2]

'जनगाथा' की सलमा जैसी औरतों को अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने के चक्कर में गन्दगी से भरी जिन्दगी जीनी पड़ती है। 'काँचघर' के खड़बन्दा जैसे कुछ पिता भी अपनी बेटियों को फिल्मों में डालने के लिए कुछ भी समझौता करने के लिए तैयार रहते हैं।

'अपना-अपना आकाश' में प्रकाश की माँ बड़ी कलाकार बनकर नाम कमाने के लिए बम्बई तो आती है लेकिन इस महानगरीय परिवेश ने इसे

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 49
2. वही, देवेश ठाकुर रचनावली-1 (काँचघर), पृ० 386

गोदीवाला, मिर्जा साहब, जॉन आदि लोगों की रखैल बनने के लिए मजबूर कर दिया । उसे अलग-अलग समय पर अलग-अलग लोगों की हवस का शिकार बनना पड़ता है। वह इसलिए जिंदगी में नाकाम रही क्योंकि वह ईमानदार थी, शरीफ थी, भोली थी और उसने सिर्फ सपने देखे थे ।"[1]

इस प्रकार देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्गीय यथार्थ को प्रकट करते हुए वेश्या-व्यवसाय की समस्या को दिखाया है जो विभिन्न कारणों से पैदा होती है और स्त्री को मजबूरी में यह निर्णय लेना पड़ता है जिससे उनका जीवन दुभर हो जाता है और समाज में विभिन्न प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न होती रहती है।

3.10 मध्यमवर्गीय युवावर्ग और कुण्ठाओं का चित्रण

हिन्दी उपन्यासों में मध्यमवर्ग की यातना, घुटन और पीड़ा का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है । सांस्कृतिक मूल्यों की टकराहट और मूल्यगत बदलाव की छटपटाहट के कारण महानगरीय मध्यमवर्ग विकीर्ण होता हुआ दिखाई देता है । आधुनिकता के पीछे दौड़ने से इस वर्ग को हार की खानी पड़ती है । पब्लिक स्कूल की पढ़ाई, फैशनवाली वेशभूषा, सिंगार आदि छोटी-छोटी बातें उसे परायेपन से व्याप्त कर देती हैं । उक्त परिस्थिति से यह वर्ग उभर नहीं पाता। 'काँचघर' के परिवार का पुत्र चिकन को किचन कहता है, जिससे उनका पब्लिक स्कूल तथा पाश्चात्य संस्कृति का अधकचरापन प्रकट होता है । इसी के परिणामस्वरूप उच्च मध्यमवर्ग के युवक माता-पिता तथा परिवार से नफरत करते हैं । गुण्डागर्दी, सैर-सपाटे, कार-लिफ्टिंग आदि करते हैं । जिन्दगी के प्रति विफलता से ग्रस्त बनकर 'नवीन' जैसे युवक आत्महत्या कर बैठते हैं और विरोध प्रकट करते हैं । भाई-भतीजावाद वाले तथाकथित प्रजातन्त्र में नौकरियाँ कभी बिना सिफारिश के नहीं मिलती । अतः उनकी ऊँची महत्त्वाकांक्षाएँ सिर्फ सपना बन जाती हैं, "योग्यता होते हुए भी

---

1. कुँवरपाल सिंह, हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पृ॰ 42

आकांक्षाओं को पूरा न कर पाने के कारण उसमें कुण्ठा, घुटन एवं नैराशा की प्रवृतियाँ बढ़ती हुई दिखाई देती हैं ।"[1]

'प्रिय शबनम' का मंगल भी अपने मध्यमवर्गीय संस्कारों की गिरफ्त से कभी मुक्त नहीं हो पाता है । प्रबुद्ध होकर भी मंगल अपने निम्नवर्गीय कस्बाई संस्कारों से ग्रस्त है । इस प्रकार मध्यमवर्गीय युवक अपने संस्कारों और कुण्ठाओं से निरन्तर लड़ते रहते हैं ।

माता-पिता, भाई-बहनों के सम्बन्ध में मध्यमवर्गीय युवक की तरह 'भ्रमभंग' का चंदन और 'प्रिय शबनम' का मंगल भावुकतापूर्ण दृष्टि रखते हैं। चन्दन स्वयं अविवाहित रहकर, दिनरात घटकर प्रतिमाह माता-पिता को पैसे भेजता है । वे ही लोग उसके साथ कितना क्रुर रवैया अपनाते हैं, जिसकी बदौलत उसके अनेक भ्रम टूट जाते हैं । मध्यमवर्ग की घुली-मिली और अस्थिर वैचारिकता और मनोवृत्ति की कटु आलोचना करता हुआ चंदन सोचता है, "मध्यमवर्ग कोई व्यक्ति होता तो वहीं चौराहे पर नंगा करके उस पर थूक देता लेकिन वह व्यक्ति कहाँ है? वह तो एक मैंटिलिटी है । एक सड़ाँध से भरी हुई प्रवृत्ति । इस सड़ाँध से कब मुक्ति मिलेगी हमें?"[2] 'काँचघर' में तो मध्यमवर्गीय युवावर्ग के दर्शन अनेक स्थलों पर होते हैं । देवेश ठाकुर चन्दन के माध्यम से निश्चय ही पारिवारिक सम्बन्धों के परम्परागत रूमानी दृष्टिकोण को तोड़ने की कोशिश में सफल हुए हैं । सरजू प्रसाद मिश्र का कहना है कि "मध्यमवर्गीय जीवन को प्रामाणिक जीवनानुभूतियों पर आधारित यह कृति एक निम्न मध्यमवर्गीय नवयुवक के जीवन संघर्ष को ही रूपायित नहीं करती बल्कि समकालीन जीवन के कुछ उपेक्षित किन्तु ज्वलंत प्रश्नों को भी कोष्टकबद्ध करती है । गरीबी में पढ़-लिखकर प्राध्यापकी करने वाला चन्दन

---

1. जयश्री भरहारे, हिन्दी उपन्यास का सातवाँ दशक, पृ० 145
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (भ्रमभंग), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 25-26

अपने संस्कारों, सफेदपोशी एवं परम्परागत मूल्यों को तोड़ न पाने की असमर्थता के कारण वेदना के सागर में डूब उतरता है ।"[1]

इस प्रकार देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्गीय युवावर्ग और उसकी कुण्ठाओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया है।

3.11 युवा विद्रोह-व्यवस्था विरोध का चित्रण

देवेश ठाकुर के उपन्यासों में युवा विद्रोह-व्यवस्था विरोध का वास्तविक चित्रण हुआ है । 'भ्रमभंग' का चन्दन मध्यमवर्गीय पढ़ा-लिखा, काबिल युवक है । उसे तथा उसके जितेन्द्र, सुरेन्द्र आदि दोस्तों को नौकरी के लिए अनेक कठिनाईयों का मुकाबला करना पड़ता है । चन्दन (भ्रमभंग) तथा मंगल (प्रिय शबनम) दोनों पढ़े-लिखे, प्रोफेसर बने युवक हैं किन्तु दोनों को मध्यमवर्गीय जीवन की अनेक कठिनाईयों के साथ जूझना पड़ता है । इस भ्रष्ट व्यवस्था के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए चंदन जितेन्द्र को पत्र लिखता है, "हमें अपने लिए भी संघर्ष करना है और इस व्यवस्था के लिए भी । हमें गन्दगी को निकालना ही होगा । चाहे वह अपने घर की हो या पूरी व्यवस्था की।"[2] 'काँचघर' के एक यूनिवर्सिटी के उच्चपदस्थ का बेटा अपने पिताजी को यही सब सुनाता है कि उनकी यूनिवर्सिटी में चल रही गुण्डागर्दी, भ्रष्टाचार आदि को उकेर कर बता देता है कि गुण्डागर्दी करने के दोनों के स्थान सिर्फ अलग-अलग है। बेटा अपनी सफाई में पिता से कहता है, "आपने हमें पब्लिक स्कूल दिए । घर में सारी सुविधाएँ दी-इतनी ज्यादा कि हमको यही नहीं सूझता कि हम करें तो क्या करें । आपने हमारी पढ़ाई को ट्यूटरों के ऊपर छोड़ दिया । हमें न कभी कोई कमी रही, न किसी का डर रहा । न घर का, न सोसायटी का ।'

---

1. सम्पा० नंदलाल यादव, 'देवेश ठाकुर : व्यक्ति, समीक्षक और कथाकार', (भ्रमभंग के रचना-संसार- सरजू प्रसाद मिश्र), पृ० 186-187
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (भ्रमभंग), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 127

–शायद मैंने तुम्हें पैदा करके गलती की ।'

–डैडी, डोन्ट इनसल्ट माई बर्थ । मैंने आपसे नहीं कहा था कि मुझे पैदा करो ।"[1]

आधुनिक युग की भ्रष्ट राजनीति के कारण समाज में सर्वोच्च स्तर पर पूँजीपतियों का राज है और नेता तथा मंत्री उनके लिए ताश के पत्तों के समान हैं । निचले स्तर पर पुलिस और अमलातन्त्र का राज है । इसके परिणामस्वरूप जनता महँगाई, गुण्डागर्दी, विक्षोभ आदि के दौर से गुजर रही है तथा इस भ्रष्ट व्यवस्था का शिकार होकर, उसके आतंक में किसी तरह साँस ले रही है । यहाँ योग्यता के बल पर किसी को कुछ नहीं मिलता बल्कि थोड़े से अयोग्य अथवा कम योग्य लोग अपने तिकड़मों के बल पर अनेक लोगों के लाभ को हड़प जाते हैं । इसलिए सुविधाओं का लाभ उन्हें मिलता है, जो साधन सम्पन्न हैं और अनेक लोग असुविधाओं तथा विपन्नावस्था का बोझ ढ़ो रहे हैं । इससे सामाजिक विषमता बढ़ती है । युवावर्ग दिशाहीन तथा विद्रोही बन रहा है । उनमें प्रचलित व्यवस्था के प्रति विद्रोही वृत्ति बढ़ती हुई दिखाई देती है । देवेश ठाकुर ने 'इसीलिए' में अवस्थी की विद्रोही प्रवृत्ति को दिखाया है– "अब मैं क्या करूँ । मुझे करना भी क्या है? मैं भाग जाऊँ क्या? लेकिन क्यों भागूँ? अब भागने से काम नहीं चलेगा । अब तो डटना पड़ेगा । आमने-सामने होना पड़ेगा । अब गुण्डों से भी लड़ाई लड़नी होगी और कानून से भी। जरूरत होने पर कानून को भी अपने हाथ में लेना पड़ेगा। जो कानून सत्य का पक्षधर नहीं होता, वह कानून नहीं है । ऐसा कानून और नहीं चलेगा ।

गाँधी की औलादो ! चिंगारी दहकने लगी है । इसमें तुम्हारी थोथरी अहिंसा और खोखला सत्य घास-फूस की तरह जल जाएगा।"[2]

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-1 (भ्रमभंग), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 322
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 110

इस प्रकार देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में युवा विद्रोह तथा व्यवस्था विरोध को मध्यमवर्ग के माध्यम से प्रकट किया है और विभिन्न प्रकार की समस्याओं को भी सामने लाया गया है ।

अत: हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि उपन्यासकार देवेश ठाकुर के उपन्यासों में सामाजिक वस्तुस्थिति के अन्तर्गत मध्यमवर्ग के यथार्थ का चित्रण हुआ है, जो समाज की रीढ़ होती है । विडम्बनाएँ उसके साथ ही अधिक होती हैं । मध्यमवर्ग को न उच्चवर्ग जैसी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं और न वह मध्यमवर्ग जैसा रह सकता है । इसी कारण अपनी विसंगतियों के मध्य कुण्ठाग्रस्त बन जाता है और विद्रोह करता है । महानगरीय जीवन के यथार्थ का सफलतापूर्वक चित्रण उपन्यासकार ने किया है तथा सामाजिक यथार्थ के वर्णन के अन्तर्गत पारिवारिक विघटन, नारी समस्या, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, सम्बन्धों की शिथिलता, फ्री लव-फ्री सेक्स, वेश्यावृत्ति, युवकों की कुण्ठा, विद्रोह आदि का उचित चित्रण देवेश जी के उपन्यासों में हुआ है । आधुनिक समाज में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण ने संयुक्त परिवार की नींव को हिला दिया है । निरन्तर एक साथ रहने के कारण सदस्यों में वैमनस्य फैलता है और कुछ सदस्यों की टुच्ची मनोवृत्ति संयुक्त परिवार के सदस्यों के बीच दीवार खड़ी कर देती है । इसी कारण एकल परिवार बन रहे हैं । पति-पत्नी और बच्चे जिसके कारण बड़ों के संस्कार और संरक्षण से विहीन बच्चे। नौकरी-शुदा पत्नियाँ, जिनका नौकरी करना परिवार के लिए बढ़ती महँगाई में आवश्यक बन गया है । इसके कारण वे आत्मनिर्भर तो बन रही हैं किन्तु घर-बाहर की समस्या खड़ी हो रही है । स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों की पुरानी मान्यताएँ मिट रही हैं तथा पति-पत्नी के रिश्ते-नातों में परिवर्तन आ रहा है । स्त्री-स्वातंत्र्य, धन लालसा, फैशनपरस्ती आदि बातों के कारण फ्री लव, फ्री सैक्स के नाम पर उच्छृंखलता बढ़ रही है तथा होटल संस्कृति विकसित हो रही है । वेश्या-व्यवसाय के नये रूप उजागर हो रहे हैं और ऐसे भ्रष्ट आदर्शहीन, अनैतिक, उच्छृंखल और

दमघोटू वातावरण में युवकों में विद्रोही वृत्ति बढ़ रही है । इस प्रकार का वास्तविक चित्रण करके उपन्यासकार ने मध्यमवर्ग का सामाजिक यथार्थ प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है ।